**Indian J. Soc. & Pol. 05(01):149-150:2018** **ISSN: 2348-0084(PRINT)**
**UGC List No. 47956** **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

# विनयपिटक–महावग्ग के नैतिक मूल्य का वर्तमान में सामाजिक महत्व

**पुष्पांजलि[1a], शिवस्वरूप सहाय[b]**
[a]प्रवक्ता, इतिहास विभाग, मैथोडिस्ट गर्ल्स पी.जी.कॉलेज,रूड़की,उत्तराखण्ड, भारत
[b]अवकाश प्राप्त रीडर एवं अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, श्री मु0म0टा0स्रा0महाविद्यालय, बलिया, उ0प्र0 भारत

**ABSTRACT**

***नैतिक शिक्षा, मनुष्य के जीवन में बहुत आवश्यक है इसका आरम्भ तो मनुष्य के बाल्यकाल से ही हो जाता है। सभी पर दया करना, कभी झूठ न बोलना, बडों का आदर करना, चोरी नहीं करना सच बोलना, हत्या जैसा कार्य नहीं करना, सभी को अपने समान समझते हुए प्रेम करना आदि नैतिक शिक्षा या नैतिक मूल्य कहलाते है। सभी धर्मो एवं ग्रन्थो का उद्वेश्य रहा है कि मनुष्य के अन्दर नैतिक गुणों का विकास करना ताकि वह मानवता के सही रास्ते पर ले जा सके और जीवन सफल हो सके 'क्योकि असफलता तभी आती है जब हम अपने आदर्श, उद्धेश्य एवं सिद्धान्त को भुला देते'। आज के युग का बालक तो इन शब्दों का अर्थ तक नहीं जानता जोकि अत्यन्त दुखद विषय है ऐसे में हमारा सामाजिक उत्तरादायित्व और बढ जाता है जैसा कि बुद्ध युग में हुआ, और भगवान बुद्ध ने किया। प्रस्तुत शोधपत्र में बुद्धकालीन सामाजिक मूल्य एवं नैतिक मूल्य का आज के युग में कितना महत्व है एवं आज के युग से कितना समन्यवित है यह बताने का प्रयास किया गया है।***

***KEY WORDS.*** *नैतिक शिक्षा, सदाचार, सामाजिक उत्तरादायित्व, सामाजिक मूल्य एवं नैतिक मूल्य*

'शीलं करेप कल्याणं शील लोके अनुत्तरं'।(सीलविमस जातक) इस प्रकार श्रमण धर्म में शील को प्रथम स्थान दिया गया है। मन, वचन, और कर्म शुद्धि शील से होती है पालि साहित्य में कहा गया कि गंगा, यमुना ये पवित्र नदियां मानव के मन को नहीं धो सकती। बाहर और भीतर को पारदर्शी सिर्फ 'शील' आचार ही बना सकता है। बाह्य आडम्बर तो सिर्फ मुर्खो के मन बहलाने के साधन मात्र है। (विसुद्धिमग्ग1940) भगवान बुद्ध ने भी वैदिक युग की भाति सदाचार (शील) को पहला धर्म मानकर आगे बाते कही है। महावग्ग (विनय पिटक) में शील के पांच प्रकार के महालाभ का उल्लेख है।(शास्त्री,1998पृ0373) 1.सदाचारी उत्साह सम्पन्न होने के कारण बहुत सी भोग सम्पत्ति अर्जित कर लेता है।2.शीलवान पुरूष का सुयश सर्वत्र फैलता है यह दूसरा लाभ है।3.किसी भी सभा में विद्वानों की भॉति निसंकोच जाता है। 4.मरते समय शीलवान अपना ज्ञान नही खोता, होश में रहता है। 5.मरने के बाद सुन्दर गति प्राप्त होती है, स्वर्ग में जन्म ग्रहण करता है। यह पॉचवा लाभ है। इस प्रकार शील से भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनो प्रकार के लाभ प्राप्त होते है। यही बात यदि आज हमारे समाज में भी सभी लोग समझ ले तो नैतिकता का अर्थ सार्थक हो जाता। श्रमण धर्म में दुखद परिणाम वाले कर्मो से बचे रहने का आदेश भी दिया गया है।(धम्मपद,8) अपने से बडे का नाम सभा या परिषद में बिना विशेषण के नहीं लिया जाता था। अर्थात नाम सम्बोधित करने से पूर्व गोत्र नाम से आह्वान किया जाता था।(वही,पृ0146)

लोग मिलने पर आने वाले से उसकी कुशलता, उनके कार्य आदि के बारे में पूछते थे भगवान बुद्ध का तो यह नियम ही था। (महावग्ग) मातृ–पितृ सुश्रूषा, गुरूजन सत्कार तथा दानशीलता के भी विवरण विस्तार से मिलते है। ये आचार के गुण अति प्राचीन है। किन्तु सभी भारतीय धर्म सम्प्रदायों ने इसके महत्व को अंगीकार किया है। भगवान बुद्ध ने बौद्ध उपासकों एवं भिक्षुओं को गुरूजन तथा माता–पिता की सेवा का महत्व बताते हुए कहा है कि, ''भिक्षुओ– माता पिता अपने सन्तान पर बड़ा उपकार करते है। वे उनका पालन–पोशण करते है तथा उन्हे संसार से परिचित कराते है''।(इतिवुत्तक,1957पृ0106) बुद्ध ने उन कुलों को ब्रह्म लोक तुल्य कहा है जहॉ माता–पिता की पूजा होती है क्योकि माता–पिता साक्षात् प्रजापति है।(वही पृ70) इससे प्रतीत होता है कि माता–पिता की सेवा अत्यन्त महत्तवपूर्ण एवं पूज्यनीय होती थी। ऐसी सेवा से देव लोक की प्राप्ति की बात भी बतायी गई है। बौद्ध युग में नैतिक गुणों के अन्तर्गत गुरू सेवा भी अत्यन्त उल्लेखनीय है। गुरू से शिक्षा प्राप्त करने के लिए पैरो में प्रणाम कर, उकडूँ बैठ हाथ जोडकर शिक्षा मांगने की परम्परा थी। शिष्य कोई भी कार्य गुरू की आज्ञा से ही करते थे अन्यथा दण्डित किये जाते थे।(शास्त्री1998 पृ0188) श्रमण धर्म में दान के महत्व का भी उल्लेख मिलता है। क्योकि दान में ही मिले वस्तुओं के कारण भिक्षु जीवन चलता था। अतः दान में मिले किसी भी सामग्री का सम्मान होता था। जातकों में वर्णन है कि किसी भी सद्गृहस्थ के द्वार से कोई भी भिक्षु या श्रमण खाली हाथ नही लौटता था।(जातक,1959पृ0120) इन नैतिक गुणों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कार्य थे जिसे करते समय रोका तो नहीं गया किन्तु उस कार्य के समाप्त होने पर लोगों द्वारा निंदा होती थी। हिंसा को भगवान बुद्ध ने पाप बताया है और हिंसा की भावना तक रखने वाले को पापी कहा है।(वही पृ0368)इसी प्रकार के ऐसे अनेकों कर्मो का

*1: Corresponding Author*

महावग्ग में उल्लेख मिलता है। जिसे पाप या अपराध कहा गया है। जिसके परिणाम स्वरूप पापी आत्मा को स्वर्ग की प्राप्ति अर्थात मौक्ष की प्राप्ति नहीं होती और उसका फल सभी को भोगना पडता है तथा अन्त में विनाश की प्राप्ति होती है।(वही पृ0310) कुछ ऐसे ही अपराधों का वर्णन इस प्रकार है–

**हिंसा** प्राणि हिंसा, विचारो द्वारा हिंसा, कुकर्मो द्वारा हिंसा सभी को भगवान ने पाप की ही संज्ञा दी है तथा इसे करने वाले को पापी कहा है। जैसा कहा है कि ''रे पापिना, तूने सत्य ही प्राणि हिसा की प्रेरणा की''(वही पृ0323) इसी प्रकार एक मातृ घातक और पितृ घातक माणवक का उल्लेख है। जिसने अपने इस पाप कर्म का प्रायश्चित करने की सोचा।(वही पृ0135)

**क्षमा न करना**–एक स्थान पर भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुये कहा है कि भिक्षुओं क्षमा मांगने पर क्षमा न करना उचित नहीं। जो न करे उसे दृष्कृत दोष लगेगा।(वही पृ078) इस प्रकार किसी के क्षमा मांगने अपनी गलती स्वीकार कर लेने पर भी क्षमादान न करना दुष्कृत्य माना जाता था।

**स्वार्थ हेतु दीक्षा लेना**– उस समय बौद्ध धर्म का प्रभाव सर्व व्याप्त था। सभी बौद्ध धर्म की दीक्षा लेना चाहते थे। कभी–कभी तो लोग अपने स्वार्थ के लिए भिक्षु जीवन अपनाने को तैयार हो जाते थे। इस पर भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु को फटकारते हुये उदर पोषण के लिए प्रव्रज्या लेना दुष्कृत्य कहा। इससे ज्ञात होता है कि यह भी एक पाप ही था।

**मिथ्यारोपण**–एक स्थान पर निर्दोष भिक्षुओं की प्रावरणा अकारण या झूठारोप लगाने को दुष्कृत्य कहा गया है। किसी के कार्य में झूठा दोष लगाकर कार्य में अवरोध करना पाप ही था। राजा इस अपराध के लिए कारागार की सजा देता था। (महावग्ग–पृ048)

**अभियान**– बुद्ध काल में आत्म प्रशंसा करना एक प्रकार का पाप माना गया है। यह भी कहा गया है कि जो अपने अर्हत्व प्राप्ति का वर्णन परिहास करते हुये मुर्खो सा करते है तो वो अपने इस पाप के प्रभाव से अन्त में विनाश को प्राप्त होते है।

**अधर्म का पालन करना (दुराचरण)**– दुराचरण करने वाला भी एक पापी ही होता था। आलोच्य ग्रन्थ में पापी व्यक्ति का पापी के साथ मैत्री सम्बन्ध का उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि पाप कर्म करने वालों की संख्या बहुतायत थी। इस प्रकार अधर्म पूर्वक आचरण करना पाप था।(वही पृ0132) और भी पाप कर्मो के उल्लेख मिलते है जैसे– संघ में फूट डालना।(वही पृ0246) इसे भगवान बुद्ध ने बहुत बड़ा पाप बताया है। व्याभिचार करना कुपित होकर दान करना((वही पृ0368)), चोरी करना(वही पृ0132) धर्म की निन्दा करना(वही पृ0132) माता पिता की अनुमति लिये बिना प्रवज्या देना, नैतिक गुरू का अपमान करना(वही पृ0262) असत्य बोलना(वही पृ0251) भी एक प्रकार का निन्दनीय कार्य था।

कुछ ऐसे भी उदाहरण बुद्ध युग में मिलते है जिसमें पाप कर्म से छुटकारा पाने का उपाय भी है। भगवान बुद्ध ने अपराध का मूल कारण धन संचय की प्रवृत्ति को माना है। निर्धन वर्ग धनवानों के धन का अपहरण करते है। फलस्वरूप समाज में चोरी, डकैती, लूटपाट, रक्तपात के साथ अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग करते, दुराचार की स्थिति तक आ जाती है। लोग दण्ड के भय से अपने अपराधिक कार्य को स्वीकार नहीं करते और इसके लिए झूठ बोलते तथा बचाव के लिए अनेक अपराध करने को प्रवृत्त हो जाते है।

## निष्कर्ष

ऐसी स्थिति में यदि नैतिक मूल्यों को नहीं समझा जायेगा तो समाज का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। बालक के नैतिक विकास की शुरूआत तो जन्म से ही शुरू हो जाती है। परिवार एवं विद्यालय में ही इस नैतिकता का मूल होता है जहॉ उसे नैतिकता के मूल्य को बताया जाता है। यदि शिक्षा में नैतिक मूल्यों का महत्व दिया जाता है तो विद्यार्थी सही मायने में मनुष्य बन सकता है। ये मूल्य उसे सिखाते है, कि उसे समाज में, बडों के साथ, अपने मित्रों के साथ एवं अन्य लोगों के साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए। बुद्ध कालीन कहानियों और महत्वपूर्ण घटनाओं के माध्यम से उसके मूल्यों को सवांरा एवं निखारा जा सकता है। विद्यालय यदि इन मूल्यों पर जोर देता है, तो बच्चों के व्यक्तिव सवांरने का काम करते है। हमारी शिक्षा प्रणाली में नैतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा। ये इस बात का संकेत है कि समाज की स्थिति कितनी हद तक गिर चुकी है। यह स्थिति नैतिक मूल्यों में आयी कमी का परिणाम है। ऐसे में हमे नैतिक शिक्षा के मूल्य को पहचानने और इसे अपने जीवन में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

## सन्दर्भ

सीलविमस जातक

सील निद्देस, (1940) *विसुद्धिमग्ग*, बम्बई, भारतीय विद्याभवन,

शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास (1998) *महावग्गपालि* अनु0 वाराणसी, बौद्धभारती

*धम्मपद, बालवग्ग*–8

*अंगुत्तर निकाय,* 2 (1957) महाबोधि सभा, कलकत्ता इतिवुत्तक, 106